International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(5): 11-13

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(5): 11-13
© 2015IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 15-05-2015
Accepted: 18-06-2015

अंतरा जीवन एलकुंचवार
पीएच.डी शोधछात्रा
63,सेन्ट्रल एक्साइज लेआऊट,
टेलिकॉम नगर के पास,
खामला, नागपुर 440025
महाराष्ट्र

Correspondence
अंतरा जीवन एलकुंचवार
पीएच.डी शोधछात्रा
63,सेन्ट्रल एक्साइज लेआऊट,
टेलिकॉम नगर के पास,
खामला, नागपुर 440025
महाराष्ट्र

श्रीमद्भगवद्गीता एवं शान्तिपर्व में वर्णित विषाद का स्वरूप

अंतरा जीवन एलकुंचवार

सारांश (Abstract) –महाभारत के भीष्म पर्व में श्रीकृष्णार्जुन संवाद रूप भगवद्गीता और महाभारत का बारहवा शान्तिपर्व यह दोनों ज्ञान की दृष्टी से अत्यंत श्रेष्ठ है। श्रीमद्भगवद्गीता और शान्तिपर्व इन दोनों की शुरूआत विषाद से ही हुई है। विषाद याने "खिन्नता, उदासी, उत्साहहीनता" और युद्ध के प्रारंभ में रणशुर वीर अर्जुन को तथा युद्ध के पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर को इसी तीव्र विषाद ने घेरा था । रणभूमीपर युद्ध हेतु सज्ज हुआ, शत्रुपक्ष के सैन्य का निरीक्षण करने के लिए दोनों सेनाओं के मध्य स्थित अर्जुन कहता है, युद्ध में स्वजन, गुरुजन व सुहृद्जन इनको मारने में न ही मुझे कुछ भला प्रतीत होता है, न मुझे विजय प्राप्ति की इच्छा है, न राज्य की, और न ही सुख प्राप्ति की इच्छा है। हम एक महापाप करने को उद्यत हो रहे है, जिसमें एक राज्य के सुखभोग के लोभ के कारण हम अपने ही संबन्धियों को मारने को तैयार है। कौरव मेरेद्वारा सामना न करते हुए हाथ में शस्त्र लेकर भी मुझ शस्त्रहीन को मारे तो वह भी मेरेलिये अच्छा है।"
इसी प्रकार का विषाद युद्धोपरान्त युधिष्ठिर में दिखाई देता है। युधिष्ठिर कहता है इस सारी पृथ्वीपर विजय प्राप्त हुई है, परन्तु मेरे हृदय में निरन्तर यह महान् दुःख बना रहता है कि मैंने लोभवश अपने बन्धु बान्धवों का महान् संहार करा डाला। यह विजय भी मुझे पराजय सी जान पड़ती है। आत्मीय जनों को मारकर स्वयं ही अपनी हत्या करके हम कौनसा धर्म का फल प्राप्त करेंगे? क्षत्रियों के आचार, बल, पुरुषार्थ और अमर्षको धिक्कार है! जिनके कारण हम ऐसी विपत्तिमें पड़ गये। हमलोग तो लोभ और मोह के कारण राज्यलाभके सुखका अनुभव करनेकी इच्छासे दम्भ और अभिमान का आश्रय लेकर इस दुर्दशामें फँस गये हैं। जिसका प्रायश्चित्तसे अन्त नहीं हो सकता, अतः हमें निस्संदेह नरकमें ही गिरना पड़ेगा। इसप्रकार अत्यंत शोक करनेवाले युधिष्ठिर ने बताया की मैं राज्य का स्वीकार नही करूंगा और वनमें संन्यासी वृत्ति धारण कर, शरीर को क्षीण करते हुए समय व्यतीत करूंगा।"
वास्तविक रूप से श्रीकृष्ण की साहाय्यता से होनेवाला यह धर्म के लिये "धर्मयुद्ध" है। किन्तु विकारों के अधीन हुए श्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन और धर्मराज युधिष्ठिर इन दोनों में विषाद उत्पन्न हुआ है। स्वजनासक्ती के कारण, "मैं अपने ज्ञातीओं का वध करूंगा या मैंने अपने ज्ञातीओं का वध किया", "लोग क्या कहेंगे? और इस पापाचरणसे अधोगति", इसप्रकार के असंख्य विचारों से, कर्म से निवृत्ति की ओर अर्जुन और युधिष्ठिर गये हैं। स्वजनासक्ती यह दोनों के विषाद का मूल होते हुए भी, कहीं पर सूक्ष्म रूप से संजय के वक्तव्य का प्रभाव अर्जुन और युधिष्ठिर के विचारों में भासित होता है।
इस निबंध में दोनों के विषाद का स्वरूप, उसके कारण और भेद इनपर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। अर्जुन तथा युधिष्ठिर के विषाद के समान हर एक मनुष्य को कभी ना कभी विषाद का सामना करना पडता है, उससमय हम इन दोनों ग्रन्थों के ज्ञान से इस विषाद को पार कर सकते है।

कूट शब्द–विषाद अर्जुन युधिष्ठिर श्रीकृष्ण स्वजनासक्ती

प्रस्तावना
महाभारत यह ग्रन्थ केवल भारतीय वाङ्मय में ही नहीं अपितु विश्ववाङ्मय में अद्वितीय और अतुलनीय ग्रन्थ है। इसके प्रणेता महर्षि कृष्णद्वैपायन है। "पंचमवेद" मान्यता प्राप्त, "शतसाहस्रीसंहिता" नाम से संबोधित इस महाभारत का ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक और दार्शनिक दृष्टीसे स्थान अक्षुण्ण है। अठारह पर्वों में विभाजित इस महाभारत ग्रन्थ के भीष्म पर्व में श्रीकृष्णार्जुन संवाद रूप भगवद्गीता यह, आकाशरूपी वाङ्मय विश्व में सूर्य की भांति अपने तेज से चमकनेवाला, नित्यनूतन तथा मानवी जीवन के लिये प्राणवायू ही है। अठारह अध्यायों से युक्त इस भगवद्गीता के केवल सर्व भारतीय भाषाओं में ही नही तथापि संसार की सर्व प्रमुख भाषाओं में अनुवाद, भाष्य एवं तद्विषयक स्वतंत्र अनेक ग्रन्थ लिखे गये है। शंकराचार्यजी की टीका यह सर्व प्रमुख और प्राचीन टीका है। रणभूमीपर व्यामोहित हुए अर्जुन को योग्य मार्ग का बोध कराने हेतु भगवान श्रीकृष्ण ने ज्ञान, कर्म, भक्ति का उपदेश किया है। यही ज्ञान, कर्म, भक्ति का सुंदर समन्वय हमें शान्तिपर्व में भी मिलता है। शान्तिपर्व यह महाभारत का बारहवा और सबसे बड़ा पर्व है। युद्ध के पश्चात् अशान्त मन को शान्ति प्रदान करनेवाला यह पर्व अपना नाम सार्थक करता है। उत्तम व्यक्तित्व, सामाजिक सुव्यवस्था वैसे ही

शान्ति तथा राष्ट्रसमृद्धी संबंधित सर्वांगीण विचार इसमें अनुस्यूत है। इस शान्तिपर्व में 365 अध्याय होकर श्लोकसंख्या 14,725 है। युद्ध के पश्चात् शोकाकुल युधिष्ठिर का अपने बान्धवों के साथ, शरशय्यापर स्थित भीष्म पितामह की ओर जाना तथा भीष्म के द्वारा राजधर्म, आपद्धर्म और मोक्षधर्म का विलक्षण ज्ञान प्रदान करना, यह शान्तिपर्व का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय 1.राजधर्मानुशासनपर्व, 2. आपद्धर्मपर्व, 3.मोक्षधर्मपर्व इन उपपर्वों में विभाजित है।

प्रमुख विषय

श्रीमद्भगवद्गीता और शान्तिपर्व इन दोनों की शुरूआत विषाद से ही हुई है। वि़+सद् धातु को घञ् प्रत्यय लगकर निष्पन्न हुए विषाद शब्द का "खिन्नता, उदासी, उत्साहहीनता" अर्थ है [1]। युद्ध के प्रारंभ में रणशुर वीर अर्जुन को तथा युद्ध के पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर को इसी तीव्र विषाद ने घेरा था । विषाद के अर्थ से ही हमें समझमें आता है की विषाद उत्पन्न होना यह मानसिक विकार होकर इसका परिणाम शरीर पर होना स्वाभाविक है और यह परिणाम अर्जुन के शरीर पर स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। स्वामी रंगनाथानन्द जी कहते है की "वास्तव में अर्जुन के संदर्भ में यह एक स्नायविक विकार था[2]।" रणभूमीपर युद्ध हेतु सज्ज हुआ, शत्रुपक्ष के सैन्य का निरीक्षण करने के लिए दोनों सेनाओं के मध्य स्थित अर्जुन कहता है –

"दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ।।
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
विपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ।।
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक् चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः[3] ।।"

अर्थात्, "हे कृष्ण, यह देखकर कि ये मेरे सम्बन्धीगण युद्ध के प्रयोजन से यहाँ एकत्रित हुए हैं, मेरे हाथ–पैर, मेरा साथ नहीं दे रहे, मेरा मुँह सूखा जा रहा है, मेरे पूरे शरीर में कम्पन हो रहा है, मेरे रोम तन्तु खड़े हो रहे हैं, गाण्डीव धनुष हाथ से छूट रहा है और मेरी त्वचा जल रही है। हे केशव, मैं सीधा खड़ा नही हो सकता। मेरा सिर चकरा रहा है।"

वास्तविक रूप से अर्जुन यह एक अद्वितीय योद्धा था। युद्ध के प्रारंभ में हुए शंखनाद के उपरान्त अर्जुन में जो उत्साह और स्फुर्ती थी उसकी परिणती स्वजन दर्शन के पश्चात् प्रथम विषाद में तदनन्तर दैन्यभाव में हुई। अर्जुन कहने लगा, "युद्ध में स्वजन, गुरुजन व सुहृद्जन इनको मारने में न ही मुझे कुछ भला प्रतीत होता है, न मुझे विजय प्राप्ति की इच्छा है, न राज्य की, और न ही सुख प्राप्ति की इच्छा है। कौरवों को लोभ के कारण कुलक्षय में होनेवाले दोष व मित्रद्रोह का पातक दिखाई नही दे रहा है फिर भी इस पाप से हम निवृत्त हो सकते है। कुलक्षय और कुलधर्म का नाश होनेपर कुलस्त्रिया भ्रष्ट होगी और वर्णसंकर होगा। हमारे समवेत संपूर्ण कुल को नरकप्राप्ति होगी। वर्णसंकर होने से जातिधर्म व कुलधर्म नष्ट होगा। हम एक महापाप करने को उद्यत हो रहे है, जिसमें एक राज्य के सुखभोग के लोभ के कारण हम अपने ही संबन्धियों को मारने को तैयार है। कौरव मेरेद्वारा सामना न करते हुए हाथ में शस्त्र लेकर भी मुझ शस्त्रहीन को मारे तो वह भी मेरेलिये अच्छा है[4]।", ऐसा अर्जुन युद्ध के पूर्व कहने लगता है।

इसी प्रकार का विषाद युद्धोपरान्त युधिष्ठिर में दिखाई देता है। युधिष्ठिर कहता है "भगवान् श्रीकृष्ण के बाहुबल का आश्रय लेने से ब्राह्मणों की कृपा होने से तथा भीमसेन और अर्जुन के बलसे इस सारी पृथ्वीपर विजय प्राप्त हुई। परन्तु मेरे हृदय में निरन्तर यह महान् दुःख बना रहता है कि मैंने लोभवश अपने बन्धु.बान्धवों का महान् संहार करा डाला। यह विजय भी मुझे पराजय.सी जान पड़ती है [5]। यदि हमलोग वृष्णिवंशी तथा अन्धकवंशी क्षत्रियों की नगरी द्वारका में जाकर भीख माँगते हुए अपना जीवन.निर्वाह कर लेते तो आज अपने कुटुम्ब को निर्वंश करके हम इस दुर्दशा को प्राप्त नहीं होते। आत्मीय जनों को मारकर स्वयं ही अपनी हत्या करके हम कौन सा धर्म का फल प्राप्त करेंगे? क्षत्रियों के आचार, बल, पुरुषार्थ और अमर्षको धिक्कार है! जिनके कारण हम ऐसी विपत्तिमें पड़ गये। हमलोग तो लोभ और मोह के कारण राज्यलाभके सुखका अनुभव करनेकी इच्छासे दम्भ और अभिमान का आश्रय लेकर इस दुर्दशामें फँस गये हैं। जब हमने पृथ्वीपर विजयकी इच्छा रखनेवाले अपने बन्धु.बान्धवों को मारा गया देख लिया, तब हमें इस समय तीनों लोकोंका राज्य देकर भी कोई प्रसन्न नहीं कर सकता [6]। मैंने ही राज्यके लोभमें आकर पुत्र, पौत्र, भाई, चाचा, ताऊ, गुरु, श्वशुर, मामा, भानजे, सुहृद्, मित्र आदि का वध करके ऐसा पाप कर लिया है, जिसका प्रायश्चित्तसे अन्त नहीं हो सकता, अतः हमें निस्संदेह नरकमें ही गिरना पड़ेगा[7] । गुरुजनों का संहार करनेवाला, कुल का नाश करनेवाला, मेरे समान दुसरा कोई नही होगा। इसप्रकार अत्यंत शोक करनेवाले युधिष्ठिर ने बताया की मैं राज्य का स्वीकार नही करूंगा और वनमें संन्यासी वृत्ति धारण कर, शरीर को क्षीण करते हुए समय व्यतीत करूंगा[8]"।

विवेचन

इस प्रकार युद्ध के पूर्व और युद्ध के पश्चात् विषाद उत्पन्न हुआ है। षड् रिपु ही सामान्यतः युद्ध का कारण रहते हुए उसका परिणाम विषाद ही होता है और उस विषाद का मूल कारण स्वजनासक्ती उसीप्रकार पापविचार तथा नरकप्राप्ती अर्थात् स्वगती के विषय में चिंता है। वास्तविक रूप से श्रीकृष्ण की साहाय्यता से होनेवाला यह धर्म के लिये "धर्मयुद्ध" है। किन्तु विकारों के अधीन हुए श्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन और धर्मराज युधिष्ठिर इन दोनों में विषाद उत्पन्न हुआ है। स्वजनासक्ती के कारण, "मैं अपने ज्ञातीओं का वध करूंगा या मैंने अपने ज्ञातीओं का वध किया", "लोग क्या कहेंगे? और इस पापाचरणसे अधोगति", इसप्रकार के असंख्य विचारों से, कर्म से निवृत्ति की ओर अर्जुन और युधिष्ठिर गये हैं।

इन दोनों के विचारों में तीन बातें प्रमुखतासे दिखाई देती है ।

1. सर्वप्रथम "मैं मारनेवाला या मरनेवाला" इस भाषा से अर्जुन और युधिष्ठिर का "आत्मा के विषय में अज्ञान" दर्शित होता है।
2. अर्जुन का युद्ध से और युधिष्ठिर का राज्याधिकार से परावृत्त होकर क्षात्र धर्म के विरूद्ध आचरण में प्रवृत्त होना, इससे दुसरा स्वजनमोह से स्वकर्तव्यकर्म को इसप्रकार टालना, इसमें "स्वधर्मनिष्ठा की कमी" दिखाई देती है। और
3. अर्जुन तथा युधिष्ठिर यह दोनों सुख के लिये, उपभोग के लिये हमें राज्य नही चाहिए, ऐसा कहते है, इससे "कर्मयोग के बारे में गलत धारणा" इन दोनों की भाषा से व्यक्त हो रहीं है, क्योंकि कर्मयोग का आचरण कभी भी फल के लिये नही होना चाहिए।

अर्जुन तथा युधिष्ठिर इनके आत्माविषयक अज्ञान का निरसन, स्वधर्म का श्रेष्ठत्व, कर्मयोग का ज्ञान और आत्मकल्याण प्रति उत्पन्न आर्तता इनके लिये श्रीकृष्ण ने अर्जुन को, और अर्जुन, भीम, नकुल. सहदेव, द्रौपदी, मुनि देवस्थान, व्यास व श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को उपदेश किया है।

पं. सातवळेकर जी कहते है की, "शिष्य की मनोभूमी अगर योग्य रीती से तैयार नही हुई तो उसके मनमें कोई भी उपदेश स्थिर नही हो सकता। जितना विषाद, खेद मन में उत्पन्न होगा उतना ही ज़्यादा आनंद, उत्साह और आशावाद का उपदेश मन में दृढ़ होगा। इसप्रकार से विषादयोग का एक विशेष महत्त्व भी है[9]।" इस दृष्टी से भगवद्गीता में अर्जुन की और शान्तिपर्व में युधिष्ठिर की मनोभूमी उपदेश ग्रहण करने के लिये योग्य रूप से तैयार हो गयी थी।

स्वजनासक्ती यह दोनों के विषाद का मूल होते हुए भी, कहीं पर सूक्ष्म रूप से संजय के वक्तव्य का प्रभाव अर्जुन और युधिष्ठिर के विचारों में भासित होता है। धृतराष्ट्रने धर्मवचनों का उपयोग करके

पांडवों को युद्ध से परावृत्त करने का जो प्रयास किया[10] उसका परिणाम याने अत्यंत हीन ऐसी स्थिती को दोनों प्राप्त हुए है। "हम अधर्म के मार्ग पर जा रहे है या हम ने अधर्म किया" यह भावना युद्ध के पूर्व अर्जुन में और युद्ध के पश्चात् युधिष्ठिर में निर्माण हुई है।

अर्जुन और युधिष्ठिर के विषाद का कारण व स्वरूप समान होने पर भी दोनों के विषाद में अंतर यह है की युधिष्ठिर का विषाद कर्म के बाद का होने से, उससे अपराधी भावना, लोकनिंदा का भय तथा प्रायश्चित्त की भाषा यह तीन बातें प्रमुखता से दिखाई देती है और अर्जुन के विषाद से आगे होनेवाले परिणामों का भय और उससे अकर्मता स्पष्ट व्यक्त हो रही है।

इसप्रकार अर्जुन तथा युधिष्ठिर के विषाद के समान हर एक मनुष्य को कभी ना कभी विषाद का सामना करना पडता है, उससमय हम अगर अपने हृदय में स्थित अंतर्यामी कृष्ण को शरण जाते है तो निश्चित रूप से वह

"क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत् त्वयि उपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ।।"

यह कहकर शक्ति प्रदान करेगा और जीवन में योग्य मार्ग दर्शन करेगा।

सन्दर्भ

1. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत.हिंदी कोश,पान.961
2. स्वामी रंगनाथानन्द, भगवद्गीता का सार्वजनीन सन्देश, भाग 1, पान 69
3. भगवद्गीता 28.30
4. भगवद्गीता 31.46
5. महाभारत, शान्तिपर्व 1.13.15
6. महाभारत, शान्तिपर्व 7.3.10
7. महाभारत, शान्तिपर्व 33.1.12
8. महाभारत, शान्तिपर्व 9 और 28
9. पं.श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, श्रीमद्भगवद्गीता, पुरुषार्थ. बोधिनी भाषा टीका, पान,40
10. महाभारत, उद्योगपर्व 20 से 32 संजययान